जगदीश पंकज के नवगीत

बाँचते ही रहे छद्म के ककहरे

बाँचते ही रहे छद्म के ककहरे
और लिखते रहे
झूठ की स्लेट पर

अक्षरों को मिलाकर
नया नाम दे
गढ़ रहे रात-दिन एक बारहखड़ी
व्यंजना ने किया
मुग्धता का चयन
लक्षणा को चिढाते हुए हर घड़ी

अंक सब, जब असंगत हुए नाट्य के
लात मारी गयी
कथ्य के पेट पर

पृष्ठ समकाल ने
जब सिसकते हुए
भूमिकाहीन होकर कहीं रख दिये
वे समय के पहरुए
कहाँ से प्रकट
हो गये हैं सजाने विगत को लिये

उक्तियाँ गूंजती हैं सभागार में
लक्ष्य है दृष्टि में
सिर्फ आखेट पर

बाद क्या है शिखर के
महाशून्य में
अन्ततः लौटना ही बचा पास है
यह विवशता रही
उच्चता की सदा
जो विजय का नहीं शुद्ध उल्लास है

राजपथ लिख रहा है महाशौर्य को
ध्यान को रख पदक की
किसी भेंट पर

प्राण पर अनजान पहरे

शब्द चुप हैं
किन्तु हैं निहितार्थ गहरे

प्रश्न
मुँह बाये खड़े
उत्तर नहीं हैं
हवा में
अफवाह भी
बेपर नहीं हैं

सच बचाने
शाख, अपनी कहाँ ठहरे

जब किसी ने
निरी भावुकता
कही है
वह विकट

अनुभूतियों ने ही
सही है

जिन्हें सुनना है
हुए वे कान बहरे

आँसुओं की
वेदना
अन्तर्निहित है
डबडबाती आँख
शब्दों से
रहित है

हर सिसकते प्राण पर
अनजान पहरे

जीवन होगा तो सब होगा

जीवन होगा
तो सब होगा
राग-रंग
व्रत, पूजा, अर्चन।

हाहाकार देख धरती पर
खिलते हुए
फूल मुरझाये
चीत्कारों की आवाजों में
कैसे कौन
चुटकुले गाये

सामूहिक
विपदा में कैसे
पाँव उठें
करने को नर्तन।

सहज सांत्वना भी सकुचाती
घर से बाहर
तक जाने में
अधरों का उल्लास छिप गया
पता नहीं किस
तहखाने में

गलियों से
मरघट तक फैला
शोकग्रस्त
साँसों का रोदन।

अँधियारे के बाद उजाले की
किरणें भी
मुस्काती हैं
सबकी साझा जिम्मेदारी
नयी सुबह
लेकर आती हैं

आज बचायें
घुटती सासें
कल करना
मिलकर रस-रंजन।

हम से उठीं, उठेंगी हम से

हम से उठीं
उठेंगी हम से
घुटती चीखों की हुंकारें!

किसका क्या
आधार मानकर
खींची गई गरीबी रेखा
और अभावों को
बतलाया
अपने ही कर्मों का लेखा

बगुला भगतों की

बस्ती में
किसे मदद के लिए पुकारें!

किसके हित में
खडे असंगत
परंपराओं के विश्लेषण
बदले नहीं
न्याय के हित में
सतत चल रहे जो निर्देशन

प्रश्न पूछने पर
हिलती हैं
सदियों की ऊँची मीनारें!

धर्मशिलाएँ,
बुर्ज, कँगूरे
शोषण का सहगान कर रहे
श्रम से चूते हुए
पसीने का
कितना सम्मान कर रहे

कैसा चलन
मजूरी करने वाले
जीती बाजी हारें !

झोपड़ियाँ
कर रहीं सभाएं
खेत-कारखानों के श्रम की
साझे सम्मेलन
करते हैं
चर्चा, वंचित जन के दम की

बाँटा है
जन-जन को जिनसे
टूट रहीं अब वे दीवारें ! स्व

ओम सुनील पंडा की कविता

गलियां

एक छोटी सी गली में
बसी होती है एक बड़ी सी दुनिया
दुनिया प्रेम की।
इंद्रधनुष के रंगों वाली दीवारें
और झाँकती हुई हवाओं
के गीत गाने वाली खिड़कियां
जो उस खूबसूरत दुनियां को
रचने में, उसे सुंदर बनाने में
लगाती है दौड़।
गली में उगता है गुलाब
गुलाब पर मंडराते है भौंरें
और गाते है मधुर गीत।
गली की दुनिया
दुनिया की गली से बहुत बड़ी
होती है !
गली की दुनिया में
ना जाने कितने चाँद होते हैं
जहाँ बहती है असँख्य नदियां